International Journal of Sanskrit Research 2022; 8(2): 224-227

International Journal of Sanskrit Research
अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2022; 8(2): 224-227
© 2022 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 09-12-2021
Accepted: 13-01-2022

डॉ. प्रोमिला खत्री
प्रवक्त्री, सर्वोदय कन्या विद्यालय
खेड़ा खुर्द, नई दिल्ली, भारत

धर्मशास्त्र में उपभोक्ता संरक्षण (पण्य प्रवञ्चनाओं के सन्दर्भ में)

डॉ. प्रोमिला खत्री

प्रस्तावना

भूमण्डलीकरण के इस युग में एक ही उत्पाद विभिन्न कंपनियों द्वारा बनाया गया है। ये कम्पनियाँ (व्यापारी वर्ग) लाभ कमाने के लिए अपने उत्पाद को क्रेता (उपभोक्ता) तक पहुँचाने हेतु अलग–अलग प्रकार के मार्ग अपनाते हैं। यथा– कीमत कम कर देना, एक के साथ एक मुफ्त देना आदि। व्यापारी वर्ग की इस लाभ कमाने की होड़ में कहीं उपभोक्ता का कोई अहित न हो जाए, इसके लिए भारत सरकार ने सन् 1986 में उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम बनाया जिसे बाद में सन् 2002 में संशोधित भी किया गया।

धर्मशास्त्र में भी उपभोक्ता के हितों को संरक्षण प्राप्त होता है। विक्रीया–संप्रदान से, पुनः विक्रय से, मूल्य सम्बद्ध तथा पण्य सम्बद्ध अनेकों प्रवञ्चनाओं से उपभोक्ता को संरक्षित करते हैं।

प्रस्तुत लेख में पण्यसम्बद्ध प्रवञ्चनाओं के सन्दर्भ में उपभोक्ता संरक्षण को दिखाने का प्रयास किया जाएगा।

धर्मशास्त्र में अनेक प्रकार की प्रवञ्चनाएँ प्राप्त होती हैं– यथा अपमिश्रण, माप तोल में गड़बड़ी, दूषित पण्य को बेचना, कृत्रिम पण्य को बेचना, संस्कारित पण्य को बेचना, तिरोहित पण्य को बेचना इत्यादि।

अपमिश्रण– अपमिश्रण–प्रवञ्चना की चर्चा स्पष्ट रूप से याज्ञवल्क्य एवं बृहस्पति स्मृतिकारों ने की है। मनु ने अविक्रेय पण्यों के प्रसंग में अपमिश्रित पण्यों के विक्रय का निषेध किया है–

''नान्यदन्येन संसृष्टरूपं विक्रयमर्हति।''[1]

याज्ञवल्क्य ने अपमिश्रण के साथ उन द्रव्यों का भी निर्देश किया है जिनमें मिलावट की जाती है। इन पण्यों का विशेष रूप से उल्लेख करना इस बात का द्योतक है कि इन पण्यों में सर्वाधिक मिलावट की जाती होगी।

भेषजस्नेहलवणगन्धधान्यगुडादिषु।
पण्येषु प्रक्षिपन् हीनं पणान्दाप्यस्तु षोडश।।[2]

याज्ञवल्क्य द्वारा मिलावट की विधि भी बतायी गयी है– ''प्रक्षिपन् हीनं'' अर्थात् हीन द्रव्यों को मिलाया जाता होगा। यहाँ हीन के दो अर्थ निकलते हैं– 1. कीमत की दृष्टि से हीन, 2. गुणवत्ता की दृष्टि से हीन।

याज्ञवल्क्य के अनुसार, यदि कोई विक्रेता मिलावटी वस्तुओं का विक्रय करता है तो राजा उससे 16 पण रूपी दण्ड वसूल करें। इस प्रकार मिलावट की रोकथाम करने का प्रयास याज्ञवल्क्य ने किया है। बृहस्पति स्मृतिकार के अनुसार, जो वणिक् मिलावटी पण्य बेचें राजा उससे तद्विगुण दिलवायें और तत्समान ही दण्ड वसूल करें।

प्रच्छाद्य दोषं व्यामिश्रं पुनः संस्कृत्य विक्रयी।
पण्यं तद्विगुणं दाप्यो वणिग्दण्डं च तत्समम्।।[3]

Corresponding Author:
डॉ. प्रोमिला खत्री
प्रवक्त्री, सर्वोदय कन्या विद्यालय
खेड़ा खुर्द, नई दिल्ली, भारत

---

1 मनुस्मृ. 8/203
2 याज्ञस्मृ. 2/245
3 धर्मकोश, पृष्ठ 1758

चूँकि यहाँ राजदण्ड की व्यवस्था पृथक् रूप से की गई है अतः 'तद्विगुणं' की व्यवस्था क्रेता (उपभोक्ता) के लिए प्राप्त होती है। ध्यातव्य है कि बृहस्पति के इस नियम में उपभोक्ता के हितों का याज्ञवल्क्य की उपेक्षा अधिक ध्यान रखा गया है। बृहस्पति ने पृथक् रूप से उपभोक्ताओं के लिए क्षतिपूर्ति की व्यवस्था कर उपभोक्ता को प्रत्यक्ष रूप से संरक्षण प्रदान किया है। माप–तोल में गड़बड़ी–
यद्यपि मनुस्मृति में प्रत्यक्षतः मापतोल में गड़बड़ी सम्बद्ध विधि प्राप्त नहीं होती है तथापि 'अविक्रेयपण्य' से सम्बद्ध पद्य में 'न च न्यून'[4] अर्थात् कम वस्तु नहीं देनी चाहिए, का उल्लेख इस बात का संकेत है कि मनु विक्रेताओं को माप–तोल में कम देने का निषेध कर रहे हैं। टीकाकारों ने भी 'न च न्यून' का यही अर्थ ग्रहण किया है।
इस विषय में यह महत्वपूर्ण है कि मनु ने माप–तोल के उपकरणों के परीक्षण का विधान किया है।

''तुलामानं प्रतीमानं सर्वं च स्यात्सुलक्षितम्।
षट्सु षट्सु च मासेषु पुनरेव परीक्षयेत्।।''[5]

छः छः महीनों में तुला, मान अर्थात् प्रस्थ द्रोण आदि का परीक्षण किया जाना चाहिए। साथ ही निर्देश भी दिया है कि ये सभी मान–प्रतिमान के साधन राजचिह्नित होने चाहिए। इसका तात्पर्य यह है कि शासन द्वारा निर्धारित मानक तुला, मानादि होने चाहिए, कूट तुलामान नहीं। उपर्युक्त विधान से स्पष्ट हो जाता है कि मनु–काल में तुलानाप सम्बद्ध गड़बड़ होती थी। इसलिए इनके समय–समय पर परीक्षण का विधान किया गया है और जिससे प्रजा के हित संरक्षित होते थे।
स्मृतिकार याज्ञवल्क्य ने इस विषय में नियम दिया है कि तोलते समय गड़बड़ी करके यदि कोई विक्रेता पण्य के आठवें भाग की चोरी करें तो उस पर द्विशत अर्थात् 200 पणों का दण्ड लगेगा तथा वृद्धि–हानि की स्थिति में दण्ड कल्पित करने का निर्देश दिया है।

मानेन तुलया वाऽपि योऽशमष्टमकं हरेत्।
दण्ड स दाप्यो द्विशतं वृद्धौ हानौ च कल्पितम्।। [6]

इस नियमपद्य में आगत 'वृद्धौ हानौ' पदों की स्थिति स्पष्ट नहीं है। अर्थात् वृद्धि और हानि किसकी दृष्टि से कही गई है– यह स्पष्ट नहीं है। यहाँ 'वृद्धौ हानौ' दो दृष्टि से सम्भव है–

1. कीमत की दृष्टि से अर्थात् अपहृत पण्य की कीमत के कम या अधिक होने पर दण्ड की मात्रा घटाई–बढ़ाई जा सकती है।
2. अपहृत अष्टमभाग की दृष्टि से अर्थात् विक्रेता द्वारा अष्टम् भाग से अधिक की गड़बड़ की गई है या आठवें भाग से कम भाग की। इसके अनुसार दण्ड मात्रा घट–बढ़ सकती है।

चूँकि प्रकृत नियम 'पण्य भाग' के अपहरण पर आधारित है। अतः यहाँ पण्य–भाग के घटने–बढ़ने को समझना, सम्यक् तथा प्रसंगानुकूल प्रतीत होता है। मिताक्षराकार द्वारा यही अर्थ ग्रहण किया गया है।

अपहृतस्य द्रव्यस्य पुनर्वृद्धौ हानौ च दण्डस्यापि वृद्धिहानी कल्प्ये।[7]
अपहृतपण्य की मात्रा के घटने–बढ़ने से दण्ड मात्रा के घटने–बढ़ने की स्थिति और भी स्पष्ट हो जाती है, जैसे यदि कोई विक्रेता पण्य के तीन भागों की चोरी करता है तो वह द्विशत पण देकर बच नहीं सकता; बल्कि तीन भागों की दृष्टि से उसे 600 पण दण्ड देना पड़ेगा। विक्रेता यह सोचकर कि द्विशत पण दण्ड ही लगेगा और क्रेता पण्य के आधे भाग का अपहरण कर लें, तो इस पण्यमात्रानुसार दण्ड व्यवस्था से उस सोच पर रोक लगेगी।
याज्ञवल्क्य ने भी कूट माप तोल के उपकरण बनाने वाले तथा इनका प्रयोग करने वालों के लिए विधि का विधान किया है।

तुलाशासनमानानां कूटकृन्नाणकस्य च।
एभिश्च व्यवहर्ता यः स दाप्यो दममुत्तमम्।।[8]

स्मृतिकार कूट तुला, मान आदि बनाने वाले तथा इनका प्रयोग करने वालों की कूटता के प्रति सचेत है। कूट तुला मानों का प्रयोग करने वाला विक्रेता प्रत्यक्ष रूप से तो तोलने मापने की प्रक्रिया को सम्यक् रूप से कर रहा होता है, लेकिन उसके प्रस्थद्रोण आदि मानक माप से कम होते हैं जिससे वह अप्रत्यक्षरूप से क्रेता को हानि पहुँचा रहा होता है।
ये कूटकार और कूटसाधनों का प्रयोग करने वाले एक–दूसरे के पोषणकर्ता है। यदि ये कूटकर्ता इन कूट साधनों का निर्माण न करें तो विक्रेता को ये प्रयोग के लिए कैसे प्राप्त होंगे?
यदि विक्रेता इन कूट साधनों का प्रयोग न करें तो उनके द्वारा बनाए गए साधन स्वयं ही व्यर्थ हो जाएगें। इसलिए ये दोनों एक–दूसरे के उपकारक हैं। अतः दोनों को दोषी माना गया है तथा इनके लिए उत्तम दण्ड का विधान किया गया है। स्मृतिकार द्वारा अन्यत्र प्रसंग में ऐसा कहा गया है

''साशीतिपणसाहस्रो दण्ड उत्तमसाहसः''[9]

कात्यायन स्मृतिकार ने भी विक्रेता द्वारा कूट माप तोल तथा कूट साधनों का प्रयोग करने पर पूर्वसाहस रूपी दण्ड की व्यवस्था की है।

तुलामानप्रतीमानप्रतिरूपकलक्षितैः।
चरन्नलक्षितैर्वाऽपि प्राप्नुयात्पूर्वसाहसम्।।[10]

3. दोषयुक्त पण्य का विक्रय– स्मृतिग्रन्थों में यह उल्लेख मिलता है कि विक्रेता दोष युक्त पण्यों का विक्रय कई प्रकार से करता है– यथा दोषयुक्त को निर्दोष कहकर बेचना, दोष को छिपाकर बेचना, निर्दोष वस्तु दिखाकर सदोष बेचना इत्यादि। याज्ञवल्क्य ने दुष्ट पण्य को अदुष्ट कहकर बेचने वाले विक्रेता लिए दुगने मूल्य रूपी दण्ड का विधान किया है।

अन्य हस्ते च विक्रीतं दुष्टं वाऽदुष्टवद्यदि।
विक्रीणीते दमस्तत्र मूल्यात्तु द्विगुणो भवेत्।।[11]

नारदस्मृति में यह स्पष्ट बताया गया है कि विक्रेता किस प्रकार से दृष्ट पण्य बेचते हैं। विक्रेता निर्दुष्ट पण्य दिखाकर सदोष पण्य देता है। अर्थात् दिखाया कुछ और आपूर्ति किसी अन्य की। विक्रेता की इस कूटता का परिणाम यह है कि वह दुगुना मूल्य क्रेता को तथा तत्समान ही दण्ड राजा को दें।

निर्दोषं दर्शयित्वा तु सदोषं यः प्रयच्छति।
मूल्यं तद्विगुणं दाप्यो विनयं तावदेव तु।।[12]

क्रेता के हितों को ध्यान में रखते हुए उनके लिए दुगने मूल्य–प्राप्ति का विधान किया गया है। दुष्ट पण्य की आपूर्ति से होने वाली

[4] मनुस्मृ. 8/203
[5] मनुस्मृ. 8/403
[6] मनुस्मृ. 2/244
[7] याज्ञस्मृ. 2/244 पर मिता.
[8] याज्ञस्मृ. 2/240
[9] याज्ञस्मृ. 1/366
[10] धर्मकोश, पृष्ठ 1869
[11] याज्ञस्मृ. 2/257
[12] धर्मकोश, पृष्ठ 887

व्यथा को यहाँ समझा गया है। क्रेता के मूल्य की महत्ता को समझा गया है।

बृहस्पति स्मृतिकार ने यहाँ दुष्ट पण्य बेचने वाले की मानसिकता को आधार बनाकर नियम दिया है। उनके अनुसार, यदि विक्रेता जानबूझकर दुष्ट पण्य दे रहा है तो नारद स्मृति के समान दुगने दण्ड का भागी होगा।

ज्ञात्वा सदोषं यः पण्यं विक्रीणीते विचक्षणः।
तदेव द्विगुणं दाप्यस्तत्समं विनयं तथा।।[13]

परन्तु यदि वह पण्य की दुष्टता से अनभिज्ञ है तब विक्रेता पर यह नियम लागू नहीं होगा।

4. तिरोहित पण्यों का विक्रय– यहाँ तिरोहित पण्यों से तात्पर्य ढके हुए, किसी पात्रादि में बंद पण्यों से है। इस प्रकार के पण्यों के विक्रय में गड़बड़ी इस रूप में हो सकती है कि पहले तो ढके हुए पण्य जैसा अन्य पण्य दिखाना, चखाना लेकिन आपूर्ति करते समय उस पण्य में मिलावट कर देना, उस बन्द पात्र से पण्य का कुछ भाग निकाल लेना अथवा पूर्णतः कृत्रिम पण्य की आपूर्ति कर देना इत्यादि। इस गड़बड़ी को इस रूप में समझ सकते हैं। यथा– मिठाई की दुकान पर विक्रेता शुद्ध अच्छी मिठाई चखाए और मिठाई के अन्य बन्द डिब्बों में उसी के समान बताये। परन्तु बाकी मिठाई के बन्द डिब्बों में मिलावटी मिठाई रख दें।

वस्तु में मिलावट इस रूप में भी हो सकती है कि डिब्बे के ऊपर वाला भाग पूर्णतः शुद्ध और नीचे वाला भाग दुष्ट हो जैसे घी के डिब्बे में ऊपर शुद्ध घी हो तथा नीचे वाले भाग में मिलावटी, नकली, अशुद्ध घी हो। अथवा जैसे विक्रेता मिर्च पाउडर का खुला पैकेट दिखाए, फिर पाउडर का बंद पैकेट क्रेता को बेच दे जिसमें वस्तुतः ईट का पाउडर हो।

इस प्रकार बंद पैकेट वाले पण्यों के विक्रय में कई प्रकार की गड़बड़ हो सकती है स्मृतिकार विशेषतः मनु तथा याज्ञवल्क्य ने इस विषय में चर्चा की है।

'अविक्रेय पण्यों' के सन्दर्भ में मनु ने निर्देश दिया है कि तिरोहित पण्य नहीं बेचना चाहिए– 'न तिरोहितम्'।[14] तिरोहित पण्यों के विक्रय का निषेध करना, इस बात का सूचक है कि मनु को इस बात का भान था कि विक्रेता ढकी हुई वस्तु में गड़बड़ कर सकता है।

याज्ञवल्क्य स्मृतिकार ने स्पष्ट कहा है कि विक्रेता ढके हुए पण्यों को बदलकर गड़बड़ी करता है। 'समुद्परिवर्तं'[15] इस प्रकार की गड़बड़ी करने वाले विक्रेताओं के लिए मूल्यानुसारिणी दण्डव्यवस्था का विधान किया गया है।

भिन्ने पणे तु पञ्चाशत्पणे तु शतमुच्यते।
द्विपणे द्विशतो दण्डो मूल्यवृद्धौ च वृद्धिमान्।।[16]

टीकाकारों द्वारा 'भिन्नपणे' का अर्थ एक पण से कम मूल्य होना किया गया है। इस नियमानुसार, जिस पण्य में गड़बड़ की गई है, उसका मूल्य यदि एक पण से भिन्न अर्थात् कम होने पर 50 पणों का दण्ड है, एक पण मूल्य होने पर 100 पणों का दण्ड, दो पण मूल्य होने पर 200 पणों का दण्ड होगा। इस प्रकार जैसे–जैसे पण्य मूल्य बढ़ेगा वैसे–वैसे दण्ड मात्रा बढ़ती जाती है।

विक्रेता इस छल से जितना लाभ कमाना चाहता है, उससे कई गुणा दण्ड का विधान स्मृतिकार द्वारा किया गया है। इस कठोर दण्ड का विधान करने का प्रयोजन समाज में प्रचलित इस कूट–व्यवहार की रोकथाम है। क्रेता विक्रेता पर विश्वास करके ही ढका हुआ पण्य ग्रहण करने के लिए तैयार हो जाता है। जबकि विक्रेता विश्वासघात करता है। विक्रय व्यवस्था में क्रेता–विक्रेता में परस्पर विश्वास होना आवश्यक है। इसका अभाव में क्रय–विक्रय प्रणाली सुचारू रूप से नहीं चल सकती। इसलिए क्रेता–विक्रेता के इस परस्पर भरोसे को बनाए रखने के लिए स्मृतिकार ने कठोर दण्ड का विधान किया है।

पण्य का संस्कार करके बेचना

यहाँ पण्य का संस्कार करने से अभिप्राय है किसी पुरानी उपभुक्त अथवा अनूपभुक्त वस्तु को झाड़–पोंछकर पॉलिशादि करके नई जैसी बना देना। किसी भी पण्य का संस्कार करने की आवश्यकता दो स्थितियों में पड़ती है–

1. जब उस पण्य का पूर्व में उपयोग किया जा चुका है विक्रेता उसे पुनः बेचने के लिए उसका संस्कार करता है।
2. दूसरी स्थिति में पण्य का पूर्व में उपयोग नहीं किया गया है फिर उसके विक्रय में क्या कठिनाई है? इसका उत्तर है– उसकी पुरातनता। अर्थात् रखे–रखे ही पुरानी पड़ गई। इसलिए उसे बेचने के लिए विक्रेता को उस पण्य को नवीन बनाना पड़ेगा और नवीन बनाने के लिए उसे संस्कार करने पड़ेंगे।

यहाँ यह ध्यातव्य है कि संस्कारित पण्य की जाति वही रहती है अर्थात् पण्य वहीं रहता है केवल उसका ऊपरी स्वरूप चमकाया जाता है। विक्रेता वह पण्य उसी नाम से बेचता है जो नाम उस पण्य का है यथा पीतल। पीतल के नाम से ही विक्रेता उस संस्कारी पीतल को बेचेगा। बृहस्पति स्मृति में संस्कारी पण्यों के विक्रय की चर्चा की गई है।

प्रच्छाद्य दोषं व्यामिश्रं पुनः संस्कृत्य विक्रयी।
पण्यं तद्विगुणं दाप्यो वणिग्दण्डं च तत्समम्।।[17]

'पुनः संस्कृत्य विक्रयी' पद्यांश द्वारा इस अपराध का उल्लेख किया गया है। उपर्युक्त दोनों ही स्थितियाँ यहाँ लागू होती हैं। स्मृतिकार द्वारा संस्कारित पण्य के विक्रय को दोष पूर्ण क्यों माना गया है? यहाँ द्रष्टव्य है इसका सम्भावित उत्तर हो सकता है कि विक्रेता द्वारा क्रेता से जिस पण्य का मूल्य ग्रहण किया गया है, वह पण्य उस मूल्य के अयोग्य है। क्रेता को दत्तमूल्य के योग्य पण्य मिलना चाहिए था लेकिन विक्रेता लाभ कमाने के लिए अल्पमूल्य वाली वस्तु को अधिक मूल्य में बेचता है। इसलिए विक्रेता को यहाँ दोषी माना गया है। इस दोष के लिए स्मृतिकार द्वारा राजा को निर्देश दिया गया है कि विक्रेता से पण्य का दुगना क्रेता को दिलवाये तथा तत्समान दुगना पण्य दण्ड के रूप में प्राप्त करें।

''पण्यं तद्विगुणं दाप्यो वणिग्दण्डं च तत्समम्।''[18]

इस प्रकार, जिस सम्यक् पण्य की आपूर्ति करने से विक्रेता बच रहा था, अब उसे चार गुना देना पड़ेगा।

इस प्रकार, धर्मशास्त्र में इन विभिन्न प्रवञ्चनाओं से सम्बद्ध विधियों का विधान करके उपभोक्ता को संरक्षित करने का प्रयास किया गया है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

मूल ग्रन्थ

1. मनुस्मृति : (व्या०) उर्मिल रस्तोगी, जे.पी. पब्लिशिंग हाउस, शक्ति नगर, दिल्ली, 2005
2. Naradiya Dharma Shastra: (Ed.) Jolly Julius, (Reprint) Takshila Hardbounds, Delhi, 1981.

13 धर्मकोश, पृष्ठ 885
14 मनुस्मृ० 8/203
15 याज्ञस्मृ० 2/247
16 याज्ञस्मृ० 2/248
17 धर्मकोश, पृष्ठ 1758
18 धर्मकोश, पृष्ठ 1758

3. याज्ञवल्क्य स्मृति : (मिताक्षरासहित), सम्पा० उमेशचन्द्र पाण्डेय, चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, पुनर्मुद्रित, 2006.
4. स्मृतिचन्द्रिका : (व्यवहारकाण्ड), (सम्पा०) श्रीनिवासाचार्य, गर्वमेन्ट ओरिएन्टल लाइब्रेरी मैसूर, भाग–1, 1914, भागन्ट, 1916.

सहायक ग्रन्थ

1. काणे, पी.वी. 'धर्मशास्त्र का इतिहास', कश्यप अर्जुन चौबे (हिन्दी अनुवाद), प्रथम एवं द्वितीय भाग, उत्तर प्रदेश, हिन्दी संस्थान, लखनऊ, प्रथम संस्करण, 1964.
2. जोशी, लक्ष्मणशास्त्री, धर्मकोश (व्यवहारकाण्ड), प्रज्ञान पाठशाला, 1938

लघु शोध–प्रबन्ध

1. खत्री, प्रोमिला धर्मशास्त्र में उपभोक्ता संरक्षण के प्रति संचेतना, संस्कृत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, 2012.